International Journal of Information Movement **Vol. 9 Issue II** **(June 2024)**
Website: www.ijim.in **ISSN: 2456-0553 (online)** **Pages 32-40**

प्राचीन भारत में मांसाहार नियम एवं निषेध

डॉ अजय कुमार
सहायक प्राध्यापक
(इतिहास विभाग) हिंदू महाविद्यालय सोनीपत

जीवन का आधार भोजन है और भोजन के लिए शाकाहारी एवं मांसाहारी भोजन का प्रयोग सदैव होता रहा है, लेकिन भारतीय समाज में मांसाहारी भोजन की अपेक्षा शाकाहारी भोजन को ही उत्तम माना गया है। प्राचीन साहित्य में ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं जिनमें मांसाहार को त्याजत्य कहा गया और इस संदर्भ में अनेक तर्क दिए गए। ऋग्वैदिक काल से ही मांसाहार में निषेधाज्ञाएं लगाई जाने लगी थी। ऋग्वेद[1] में मांसाहारी तथा दूध चुराने वालों को दण्ड देने को कहा गया है। वस्तुतः वैदिक काल में पशुओं को विशेष महत्व दिया गया था। पशुओं के रक्षक के रूप में 'पूषा' नामक देवता की प्रतिष्ठा हुई। लोगों का विश्वास था कि अप्रत्यक्ष रूप से पूषा गौओं और अन्य पशुओं की देखभाल करता है। पूजा की कृपा से ही गौओं की बहुलता होती है। पशुओं को सभी विपत्तियों से बचाने का उत्तरदायित्व पूषा का ही मानते थे। वह गायों का अनुसरण तथा अश्वों की रक्षा करने वाला था। गायों का तो विशेष महत्त्व था। वैदिक मन्त्रों द्वारा गौओं को उत्कृष्ट बनाने का आयोजन किया जाता था। इसकी उपयोगिता को देखते हुए ही इसे 'अहन्या' बताया गया तथा कहा गया कि "यह देवी है, गाय की हत्या न करो, यह निर्दोष है, स्वयं अदिति है।"[2] गाय को अत्यंत पवित्र माना गया। यज्ञों में देवी–देवताओं की स्तुति की जाती थी कि पशुओं को सुरक्षित रखते हुए गौशाला पहुंचा दे। कहा गया है कि गाय का क्षीर, दही, घृत ही भक्षण योग्य है, मांस नहीं। गाय का मांस खाना अत्यंत भयंकर अपराध माना गया। गाय का मांस खाने वाले व्यक्ति के वंशजों से भी दूर रहने का निर्देश दिया गया है।[3] इन उल्लेखों से विदित होता है कि वैदिक काल में गाय का मास खाना निषिद्ध था। गौमांस खाने वालों का सामाजिक बहिष्कार किया जा सकता था, लेकिन इन निषेधों से यह भी आभास होता है कि कुछ लोग सभी प्रकार का मांस खाते थे, इसी कारण गौ मांस का भक्षण निषेध किया गया । स्पष्ट है कि इस काल से ही मांसाहार के प्रति विरोध के स्वर उठने लगे थे, यहां तक की पशुओं की बलि देकर सम्पादित किये जाने वाले यज्ञों का महत्त्व भी घटने लगा। यज्ञों में घोड़ों की हत्या के विरुद्ध भी निषेधाज्ञाएं लागू की गई।[4] वानप्रस्थ और सन्यास मार्गी मुनिवर्ग के लिए मांस–भोजन सर्वथा परित्याज्य माना गया। सामान्य जन के लिए भी मांसाहार निषेध माना गया। कहा गया है कि जो व्यक्ति जिसको इस लोक में खाता है, वही उसको परलोक में खायेगा।[5] निस्संदेह इस समय समाज में सामिष भोजन को आध्यात्मिक अभ्युदय के प्रतिकूल और अपवित्र मानने की भावना का अभ्युदय हो चुका था, तथा मांस के परित्याग का जो आदर्श इस समय प्रतिष्ठित हो रहा था उससे सम्पूर्ण समाज पर प्रभाव पड़ रहा होगा। इसी प्रकार पवित्र और अपवित्र मांस के नियम भी बनाए गए। लोगों में यह धारणा बनी हुई थी कि मांसाहारी व्यक्ति भक्ष्य पशु–पक्षी के गुण–दोषों को ग्रहण कर लेगा।[6] अतः निष्ठुर पशु–पक्षियों का मांस अभक्ष्य माना

गया। उन पक्षियों का मांस खाना निषेध था जो मांसभोजी ग्राम में रहते हैं तथा विष्ठा के ढ़ेर को खरोंचते हैं। कहा गया कि कुत्ते का मांस, पालतु मुर्गे का मांस, सूअर और मांसाहारी पशुओं को पापी लोग खाते हैं। तलवार से काटे गये जानवरों का मांस भी खाना वर्जित था। गौतम, आपस्तम्ब दोनों ने जबड़ों में पंक्तिबद्ध जमे हुए दांतों वाले, अधिक बाल वाले जानवरों, बाल रहित पशुओं, ग्राम कुक्कुट, सूअर, गाय तथा सांड का मांस खाना वर्जित माना गया था।[7] इसी प्रकार चातक, सुग्गे, सारस, एक खुर वाले जानवर, ऊँट, गवयों, पालतु कबूतर, टिड्डियों तथा सभी पालतू पशुओं का मांस भी सर्वथा वर्जित माना गया है। स्वाभाविक रूप से पालतू पशु–पक्षियों के प्रति पोषक के हृदय में अपनत्व तथा संवेदना का भाव आ जाता है, अतः उनको मारकर खा जाना अनुचित माना गया। इसी कारण पालतू होने तथा गाय का महत्त्व उसके पंचगव्य की पवित्रता से और भी अधिक बढ़ने लगा। इससे प्रतीत होता है कि इस समय गाय की हत्या साधारणतः नहीं की जाती थी।[8] यद्यपि समाज में मांसाहार का व्यापक प्रचलन था तथापि अनेकानेक पशु–पक्षियों का मांस भक्षण करना निषेध था। श्राद्ध के समय भी व्यवस्था थी, कि अगर कोई मांस नहीं खाता हो, तो उसके लिए शाकाहारी भोजन की व्यवस्था की जाये। यह भी संकेत मिलता है कि अतिथि के भोजनार्थ प्रस्तुत किये गये बैल और बकरी को अतिथि ग्रहण करके छोड़ देता था, उन्हें मारा नहीं जाता था।[9] इसी प्रकार आपस्तम्ब धर्मसूत्र[10] में उल्लेख मिलता है कि वैदिक आचार्य को उपाकर्म से लेकर उत्सर्जन की अवधि तक पूर्णतया मांस का त्याग कर देना चाहिए। सन्यासी भी मांस का आहार नहीं लेते थे। विदित होता है कि इस समय समाज में भक्ष्य–अभक्ष्य दोनों प्रकार का मांस प्रचलित था। अनार्य जातियों में मांसाहार में भक्ष्य–अभक्ष्य मांस का नियम नहीं था। उनके लिये हर प्रकार का मांस गर्हित था, लेकिन आर्यों के मध्य मांसाहार के विषय में व्यापक नियम प्रचलित थे। बन्दर का मांस सदाचारी लोगों के लिए वर्जित था। इसके अतिरिक्त कांटों से रहित मछलियां, कच्छप, चार पैरों वाले सभी जीव, मेंढक, जल में उत्पन्न होने वाले अन्य जीव, हंस, गरुड़, चकृवाक, बत्तख, बगुले, कौवे, भद्गु (एक प्रकार का जलचर पक्षी), गिद्ध, बाज, उल्लू, कच्चा मांस खाने वाले, दोनों ओर चार दाढ़ों से युक्त, सभी हिंसक पशु आदि जीवों का मांस खाना अनुचित माना गया था।[11] गोहत्या निषिद्ध थी। गोहत्या को पापकर्म बताया गया है। अर्जुन ने जो शपथ ली थी, उसमें गोवध को भी पातक बताया गया है।[12] अतिथि को उपहार स्वरूप गोदान करने के उदाहरण महाभारत में सर्वत्र मिलते हैं। जनमेजय द्वारा सर्पयज्ञ करने का पता चलने पर व्यासदेव जब वहां पहुंचे तो जनमेजय ने महर्षि को यथोचित अभ्यर्थना करके गाय भी दान की। महर्षि भी सब कुछ लेकर चले गये और गाय का पालन पोषण करने लगे।[13] स्पष्टतः महाभारत काल से गायों का धार्मिक महत्त्व अतिशय बढ़ा और गोधन को सर्वश्रेष्ठ धन के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। अनुशासन पर्व[14] में गाय की महत्ता का गुणगान किया गया है। कहा गया है कि गाय के नाम का कीर्तन, श्रवण, गोदान, गोदर्शन आदि प्रशंसनीय कल्याणप्रद और पाप नाशक हैं। गाय लक्ष्मी का मूल और देवताओं के लिए हवि देने वाली है। स्वाहा और वषट्कार नित्य गौओं में प्रतिष्ठित होते हैं। गायें यज्ञों के नेत्र तथा मुख हैं। वे दिव्य अमृत को उत्पन्न करती हैं और तेजस्विता तथा शरीर से अग्नि के समान हैं। जिस स्थान पर गौओं का समूह निर्भय होकर श्वास लेता है, वह प्रदेश सुशोभित होता हैं, वहां के सभी पाप दूर होते हैं, गायें स्वर्ग की सीढ़ी हैं। स्वर्ग में उनकी पूजा होती है। वे कामनायें पूर्ण करती हैं, उनसे बढ़कर कुछ भी नहीं है। जो व्यक्ति अभक्ष्य

मांस का सेवन करते थे उन्हें समाज में निम्न समझा जाता था। लेकिन आपातकाल में खाद्याखाद्य का विचार करना संभव नहीं होता। अतः ऐसी परिस्थिति में अभक्ष्य मांस खाने की अनुमति थी। महर्षि विश्वामित्र तथा राजा शैल्य के यज्ञ में वृत्त ऋषियों के विकट परिस्थिति में अभक्ष्य मांस खाने का प्रयत्न किया था।[15] लेकिन कुल मिलाकर मांस भक्षण के विषय में संयमित जीवन जीने की शिक्षा दी गई थी। कहा गया कि केवल आत्म तृप्ति के उद्देश्य से पशु–पक्षी का वध करना तथा मांस भक्षण करना अनुचित है। यह आवश्यक नहीं कि सभी लोग मांसाहार करें, समाज में ऐसे लोग भी थे जो मांसाहार नहीं करते थे तथा इसको निंदित कृत्य मानते थे। कहा गया है कि व्रत्त रखने वाला व्यक्ति मांसाहार नहीं करता था। धार्मिक जीवन जीने वाले कई व्यक्ति मांसाहार को त्याग देते थे।[16] शांति पर्व[17] में यहां तक कहा गया है कि जहां कहीं भी यज्ञ में पशु–वध हो वहां सत्पुरुषों का धर्म नहीं है। मांस भक्षण के प्रति इस समय विरक्ति के भाव भी दिखाई देते हैं। लगता है समाज का एक वर्ग मांसाहार को पाप कर्म मानते हुए इसको मानव के द्वारा आध्यात्मिक अभ्युदय तथा सात्विकता प्राप्त करने में बाधक मानता था। सभी जीवों के प्रति दया और अपनत्व के भाव से ही हृदय में सात्विकता आती है। अतः अनुशासनपर्व[18] में कहा गया है “पशुओं का मांस अपने पुत्र के मांस के समान ही है, यह समझाना निरी भूल है कि मैं स्वयं तो मार ही नहीं रहा हूँ, केवल मांस खाता भर हूँ, मुझे पाप लगने का कोई कारण नहीं। वास्तव में अपने आप मरे हुए या किसी अन्य व्यक्ति के मारे हुए प्राणी का मांस खाने वाला उसके वध करने वाले के समान ही है। मांस क्रय करने वाला धन से, खाने वाला अपने उपभोग से और घातक वध और बंधन से उस प्राणी का वध करता है। प्राणियों को अपना जीवन सबसे प्रिय है। ऐसी परिस्थिति में सभी प्राणियों के प्रति दया करनी चाहिए। अहिंसक सभी प्राणियों का पिता तथा माता है।” इसके अतिरिक्त मांस–भक्षण को धार्मिक दृष्टि से पाप–फल देने वाला तथा मांस–परित्याग को इस लोक तथा परलोक में आध्यात्मिक अभ्युद का कारण बताया गया तथा सुख, धर्म और स्वर्ग का सर्वश्रेष्ठ आयतन माना गया। अनुशासन पर्व[19] में मांसाहार त्याग का महात्मय तथा मांसाहार से होने वाली मांस भक्षक की भयावह दुर्गति का विवेचन करते हुए कहा गया है कि “अहिंसक का रूप सुंदर हो जाता है, अंग पूर्ण और निर्दोष होते हैं और आयु, बुद्धि, सत्व और स्मरण शक्ति बढ़ती है, सौ वर्षों तक प्रतिमास, अश्वमेघ यज्ञ करने वाले के समान पुण्यशाली मधु और मांस को न खाने वाला होता है। जो मांस नहीं खाता या पशुओं को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता वह सभी प्राणियों का मित्र और विश्वासपात्र बन जाता है, उसकी किसी प्रकार की हानि प्राणिवर्ग नहीं कर सकता। सज्जनों के मध्य ऐसे पुरुष का सम्मान होता है। जो व्यक्ति अपना मांस अन्य प्राणियों के मांस से बढ़ाना चाहता है, वह निश्चय ही विनाश के पथ पर है। कोई व्यक्ति मधु–मांस न खाकर मानों यज्ञ ही करता है। सदा दान ही देता रहता है और तपस्वी रहता है। मांस का परित्याग सुख, धर्म और स्वर्ग का सर्वश्रेष्ठ आयतन है। मांस न खाने वाला सर्वत्र निर्भय रहता है। वह कभी उद्विग्न नहीं होता। मांस खाने से आयु क्षीण होती है। जो दूसरों के मांस से अपना मांस बढ़ाता है, वह जहां कहीं भी अगले जन्म में उत्पन्न होता है, वहीं उद्विग्न रहता है। मांस न खाने से धन, आयु, यश आदि बढ़ते हैं और स्वर्ग में स्थान मिलता है। यज्ञ के बहाने भी मांस खाने वाला नरक में स्थान पाता है। प्राचीन काल में यज्ञ के समय भी अन्न के पशु बनाकर उन्हीं की बलि चढ़ाने की परम्परा रही है। मांस न खाने से तपस्या का फल मिलता है। जो चार

वर्ष तक मांस नहीं खाता उसे कीर्ति, आयु, यश और बल चार मंगलों की प्राप्ति होती है। यदि एक मास भी बिना मांस खाये रह जाये तो मानव सभी दुखों से छुटकारा पाकर स्वस्थ बना रहता है। मास या पक्ष भर भी मांस न खाये तो ब्रह्मलोक में स्थान पाने का अधिकारी हो जाता है। जो मनुष्य जीवन भर मांस नहीं खाता वह स्वर्ग में विपुल स्थान पाता है। इसके विपरीत मांस भक्षक की भयावह दुर्गति कुंभीपाक नरक में होती है। मांस भक्षक जिस प्राणी का मांस खाता है उसी का मांस वह प्राणी अगले जीवन में खायेगा। अहिंसा सबसे बढ़कर धर्म, दम, दान, तप, यज्ञ, फल, मित्र और सुख है।''तत्कालीन समाज में सात्विक वृत्ति वाले ऐसे लोग भी थे जो मांसाहार को समादर की दृष्टि से नहीं देखते थे तथा इसको अध्यात्मिक उन्नति के लिए बाधक मानते थे। अतः मांस भक्षण को निषेध करने के ही पक्ष में थे। स्पष्टतः इससे समाज के अन्य सात्विक वृत्ति वाले अध्यात्मवादी व्यक्तियों की मांस के प्रति धारणा अवश्य ही परिवर्तित हुई होगी। लेकिन समाज में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं थी जो किसी भी परिस्थिति में मांसभक्षण नहीं करते थे। इस विषय पर आवश्यक चूर्णी[20] में द्वारिका के अरहमित्त श्रावक के पुत्र जिनदत्त की कथा आती है कि एक बार वह किसी भयंकर रोग से पीड़ित हुआ, वैद्यों ने रोग निदान हेतु मांस भक्षण अनिवार्य बताया, लेकिन वह अपने व्रत पर दृढ़ रहा। उसने कहा कि ''जलती हुई अग्नि में जलकर मर जाना अच्छा है किन्तु चिरसंचित व्रत को भंग करना ठीक नहीं।'' इसी प्रकार बौद्धों और हस्तितापसों के मध्य शास्त्रार्थ होते समय भी आर्द्रककुमार साधु ने मांस भक्षण की निंदा की है।[21] आचारांग सूत्र[22] में उन संखड़ियों (भोजों) में जैन भिक्षु या भिक्षुणी को सम्मिलित होने के लिए निषेध किया गया है, जहां पर जीवों की हत्या कर उनका मांस अतिथियों को परोसा जाता था। उत्तराध्ययन सूत्र[23] में अरिष्टनेमि की कथा आती है कि जब वे अपनी बारात लेकर राजा उग्रसेन की कन्या राजीमती को ब्याहने जा रहे थे तो रास्ते में पशुओं का करुण क्रंदन सुनकर उन्होंने अपने सारथी से इस विषय में प्रश्न किया। सारथी ने उत्तर दिया ''महाराज! आपके बारातियों को खिलाने के लिए मारे जाने वाले पशुओं की यह चीत्कार है।'' यह सुनकर अरिष्टनेमि को वैराग्य उत्पन्न हो गया और संसार का त्याग कर उन्होंने श्रमण दीक्षा धारण की। स्पष्टतः जैन धर्म में मांसाहार त्याग की भावना इसके मूल में छिपी हुई थी। यद्यपि तत्कालीन समाज में इसका पूर्णरूपेण निषेध नहीं हो सकता था और न ही इस प्रकार की मानसिकता तत्कालीन समाज में बहुतायत रूप से विद्यमान ही रही होगी। लेकिन धीरे–धीरे मांस भक्षण निषेध जैन धर्म में प्रमुखता प्राप्त करता गया और अन्ततः जैन भिक्षु के लिए अव्यवहारिक रूप तक उसके जीवन आचरण के साथ जुड़ गया। मौर्य काल में निरामिष भोजन ग्रहण करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। जो भोजन पहले अनुज्ञात थे वे बाद के काल में निषिद्ध हो गये होंगे, पर जो पहले निषिद्ध थे, वे बाद में अनुज्ञात नहीं हो सकते। बौधायन और गौतम दोनों ने पांच पदांगुलि वाले प्राणियों, सेह और कछुए को खाने को अनुज्ञात किया है, पर वे कहते है कि गैंडे के बारे में कुछ संदेह है, परन्तु अशोक के काल में न केवल गैंडा बल्कि सेह और कछुआ भी निषिद्ध था।[24] मौर्य काल में निस्संदेह समाज में मांसाहार के प्रति विरक्ति का भाव जगाने में बौद्ध और जैन धर्मों के बढ़ते हुए प्रभाव का भी महत्त्वपूर्ण योगदान था। धर्मशास्त्रों तथा स्मृतियों में मांस भोजन की अपेक्षा शाकाहार के ही सात्विक गुणों की सर्वत्र प्रशंसा की गई थी। इसी कारण समाज में ऐसा वर्ग भी था जो निरामिष आहार करता था। मैगस्थनीज[25] भी कहते हैं कि ''भारतीय दार्शनिक मुख्यतः मांसाहार से परहेज ही करते थे।''

मांस भोजन को आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति में बाधक माना गया था, क्योंकि तामस प्रवृत्ति के लिए व्यक्ति का हिंसात्मक व्यवहार ही मुख्य रूप से उत्तरदायी होता है और मांस भोजन बिना हिंसा किये प्राप्त नहीं हो सकता। अतः सात्विक प्रवृत्ति प्राप्त करने के लिए सभी धर्मों में शुद्ध एवं सात्विक आहार को भी आवश्यक माना है। स्वयं सम्राट अशोक पर बौद्ध धर्म का गहरा प्रभाव था। उसने मांस भोजन पर प्रतिबन्ध लगाकर स्वयं उदाहरण प्रस्तुत किया। जहां उसकी पाकशाला में प्रतिदिन भोजन के लिए सहस्रों पशुओं का वध किया जाता था, उसने नियम बनाया कि केवल दो मोर और एक हिरण को ही भोजन के लिए मारा जाएगा लेकिन उसने यह भी सूचित किया कि इन पशुओं का वध भी भविष्य में बन्द कर दिया जाएगा। सम्राट अशोक की दया भावना के पात्र न केवल मनुष्य ही थे अपितु पशु भी थे। उसने जहां मनुष्यों के लिए औषधालय खोले, वहीं पशुओं के लिए भी औषधालयों की व्यवस्था की। राजपथ पर अशोक द्वारा लगवाए गए वृक्ष, कुएं इत्यादि मनुष्यों के साथ–साथ पशुओं के लिए भी समान रूप से थे।[26] अपने तृतीय शिलालेख[27] में सम्राट अशोक अपनी प्रजा को समझाते हैं कि प्राणियों को न मारना साधु पथ है। सम्राट ने धर्म के परम सिद्धान्त 'अहिंसा परमो धर्मः' का प्रचार करते हुए स्तंभ लेख पांच[28] में लिखवाया कि ''देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहता है कि अभिसिक्त होने के 26वें वर्ष मैने पशु–पक्षियों को मारने का निषेध करवाया। जैसे–तोता, मैना, अरूण, चक्रवाक, वन–हंस, नान्दीमुख, सारस (बक), जतुकों (गीदड़), मछलियां, विदर्भी (एक मछली), संकुच, मच्छ, कछुआ (कमठ), शल्य (साही), प्रणशश, बारहसिंहा, सांड, ओकपिंड, मृग, श्वेत बतख और पालतू बत्तख तथा अन्य चतुष्पद जो न किसी काम में आते हैं और न खाये जाते हैं, मेषी, सूकरी (वाराही) तथा जो नव–प्रसूता हैं या जो दूध देती हैं, न मारे जाएँ तथा उनके बच्चे जो छः मास से कम हैं वे भी न मारे जाएँ। मुर्गों को बधिया करने की अनुज्ञा नहीं है। जिस भूसे में जीव हैं, वह फूका न जाए। बिना प्रयोजन प्राणियों की हिंसा के लिए जंगल न जलाए जाएँ। जीवन का पोषण जीव से न होना चाहिए। तीन चार्तुमासों में तिष्य पूर्णिमा के दिवस मछली न तो मारी जा सकती है, न बेची जा सकती है, ऐसा तीन दिनों तक होगा अर्थात प्रथम पक्ष के 14वें और 15 वें दिन और दूसरे पक्ष के पहले दिन तथा अन्य उपवासों के दिनों में भी इस आज्ञा का पालन होगा। इन्हीं अवसरों पर हाथियों के जंगल (नागवन) और कैवर्त भोग मछलियों के तालाब में जो भी अन्य प्रकार के जीव हैं, मारे न जाएं। प्रत्येक पक्ष की आठवीं, चौदहवीं, पन्द्रहवीं तिथि पर तथा 'तिष्य' और 'पुनर्वसु' के अवसर पर तथा तीन चातुर्मासों के शुक्ल पक्ष और प्रत्येक चातुर्मास के पूर्णिमा के दिन घोड़े, बैल, गाय, बकरों, भेडों, सूअरों तथा अन्य पशुओं को न दागा जाना चाहिए।'' प्रत्यक्ष है कि सम्राट अशोक ने राजकीय नियमों के द्वारा मांस के लिए पशु वध पर रोक लगाने के भरसक प्रयत्न किये। धार्मिक दृष्टि से सात्विक की अभिवृद्धि के लिए शाकाहार श्रेष्ठ माना गया था। मांस भोजन को आध्यात्मिक अभ्युदय के प्रतिकूल और उपावन माना गया। बौद्ध, जैन इत्यादि संस्कृतियों में अहिंसा का प्रधान रूप से प्रतिपादन किया गया। अहिंसा के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी प्राणी का वध नहीं करना चाहिए। प्राणियों का वध किये बिना मांस मिलना असंभव था। अतः अहिंसा के व्रत को अपनाने के लिए आवश्यक था कि मांस भोजन न किया जाए। सम्राट अशोक के अहिंसा के साथ–साथ मनुष्यों तथा पशु–पक्षियों के प्रति जिस दया–भाव की प्रतिष्ठा की उनका प्रतिपालन भी तभी हो सकता था जब मांस भोजन का सर्वथा त्याग किया जाता। अतः सम्राट अशोक ने प्रजा को

प्राणिवध से विरत करने के लिए बहुविध प्रयत्न किये और इस दिशा में उसे सफलता भी मिली।[29] मौर्योत्तर काल में यद्यपि मांसाहार का प्रचलन अत्यधिक था लेकिन कईं अवस्थाओं मे मांसाहार को निषेध भी किया गया था। ऐसे दिन भी पहले से ही नियत थे जब कोई किसी पशु का वध मांस के लिये नहीं कर सकता था।[30] मनु अनेक प्रकार के पशुओं तथा कच्चा मांस खाने वाले पक्षियों गिद्ध, बाज, चील तथा ग्रामवासी पक्षी, कबूतर, मैना आदि का मांस तथा एक खुर वाले पशुओं के मांस का प्रयोग करना अनुचित बताते हैं। मनु कहते हैं कि केवल मधुपर्क यज्ञ श्राद्ध तथा देवकार्य मे ही पशु का वध करना चाहिये, जो मनुष्य अहिंसक जीवों का अपने सुख की इच्छा से वध करता है वह जीता हुआ तथा मर कर भी कहीं सुखपूर्वक उन्नति नहीं करता। ब्रह्मचारियों के लिये भी मांस–भक्षण निषेध था किन्तु आपातकाल में ही उन्हें मधु, छार एवं लवण के साथ–साथ मांस–भक्षण की अनुमति भी प्रदान की गयी थी।[31] बौद्ध भिक्षुओं के लिये भी मांस–भक्षण के नियम बनाए गये थे। महात्मा बुद्ध ने उनके लिये त्रिकोटि शुद्ध मांस–भक्षण का ही विधान किया अर्थात् अदृष्ट, अश्रुत, अपरिशंकित ऐसा मांस ही भक्षण किया जा सकता है।[32] जैन भिक्षुओं के लिए मांसाहार पूर्णतः निषेध था। कहीं असावधानीवश भोजन करते समय कोई कीट–पतंगा न खाया जाए इस कारण वे लोग संध्या होने से पूर्व ही भोजन कर लेते थे। वे मांस के अतिरिक्त शहद, मदिरा, हरी अदरक, मक्खन, दही और फूलों को भी नहीं खाते थे, क्योंकि इनमें कई प्रकार के जीवाणु होते थे।[33] सम्भवतः मांसाहार को समाज का एक वर्ग पूर्णतया निषेध करने के पक्ष में था, जो मांसाहार को व्यर्थ तथा पापदायक मानता था। हालांकि अतिथि के भोजन सत्कार के लिये बैल और बकरे को प्रस्तुत किया जाता था। लेकिन साधारणतः अतिथि इन पशुओं को ग्रहण करने के उपरांत स्वतंत्र कर देता था, उन्हें मारा नहीं जाता था।[34] इस समय लगता है मांस का सेवन अत्यधिक बुरा कर्म माना जाने लगा था। यहां तक कि मांस को राक्षसों तक का भोजन बताया गया। कहा गया कि जीवों की बिना हिंसा किये कहीं मीमांसा नहीं उत्पन्न हो सकती और जीवों की हिंसा स्वर्ग–साधन नहीं अतः मांस भक्षण नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया जो व्यक्ति जीवों का वध तथा बन्धन नहीं करता वह मनोवांषित फल प्राप्त करने वाला सबका हितैषी, अत्यंत सुख प्राप्त करने वाला होता है तथा उसे सौ अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है।[35] गुप्तकाल में भी मांसाहार का व्यवहार किया जाता था। लेकिन कुछ पशुओं का मांस तथा कुछ परिस्थितियों में मांस का प्रयोग करना निषेध था। गाय की हत्या करना पूर्णतः निषेध था। इसकी हत्या करना ब्रह्महत्या के समान घृणित अपराध माना जाता था।[36] हाथी को मारना भी शास्त्र के विरुद्ध था। हाथियों को राजा पकड़वा कर मंगाते थे और उनको युद्ध के लिए सुरक्षित रखते थे।[37] अनेक अवसरों जैसे कमला सप्तमी के दिन मांस से युक्त तथा तेल से युक्त भोजन करना निषेध माना गया था।[38] धार्मिक अनुष्ठानों में भी पशु–बलि का महत्त्व कम होने लगा था। एक स्थान पर वायु पुराण[39] भी धार्मिक अनुष्ठानों में जानवरों की बलि करने की अपेक्षा अनाजों का प्रयोग करने को महत्त्व देते हैं। बृहस्पति स्मृति[40] के अनुसार जिन औरतों के पति घर से बाहर गये होते थे, उनके द्वारा भी मांस भोजन नहीं किया जाता था। लेकिन समाज में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं थी जो मांसाहार को पूर्ण रूप से त्यागने के पक्ष में थे। सोमदेव[41] उल्लेख करते हैं कि ''धार्मिक कार्यों में, श्राद्ध में, अतिथि के लिए अथवा औषधि के लिए किसी भी जानवर की हत्या नहीं करनी चाहिए।'' अन्य स्थान पर वे कहते हैं कि ''जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को

अपना जीवन प्रिय होता है वैसे ही अन्यों को अपना जीवन प्यारा होता है। अतः किसी को भी अन्य जीव को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए।'' तत्कालीन पुराणों में भी मांसाहार की घोर निंदा की गयी है। कहा गया है कि जो मांस नहीं खाते वे स्वर्ग में स्थान पाते हैं, मांसाहार नहीं करने से जो पुण्य प्राप्त होता है वह एक सहस्र गायों के दान के बराबर होता है। सभी तीर्थों में जाने और सभी यज्ञों के सम्पादन करने से जो पुण्य प्राप्त होता हैं, वह मांस न खाने वालों को स्वतः ही मिल जाता है।[42] भागवत पुराण में कहा गया है कि धर्म को जानने वाला व्यक्ति न तो स्वंय मांस भोजन करे और न ही श्राद्ध में पितरों को समर्पित करे। पशुओं के मांस से उतनी तृप्ति नहीं होती जितनी मुनियों के भोजन से होती है। कहा गया कि सद्धर्म की कामना करने वाले व्यक्ति के लिए मन वाणी और कर्म से किसी भी प्राणी को दुख न देना ही परम धर्म होता है। भागवत पुराण में ही कहा गया है कि नित्य और नैमित्तिक क्रियाओं का सम्पादन सुनिजनोचित्त अन्नों से ही करें। वैदिक हिंसा को उचित समझने वालों के लिए कहा गया है कि वैदिक साहित्य में भी मांस–मद्य से निवृत्ति कर देना ही अभिष्ट अर्थ है। यज्ञ में पशुओं के आलभन का अर्थ उनकी हिंसा नहीं है।[43] ये विचार निस्संदेह जनता के बीच प्रभावशाली ढंग से प्रतिष्ठित हुए। संभवतः इसी कारण जो लोग धार्मिक कृत्यों में जानवरों की बलि देना आवश्यक मानते थे, वे जानवरों की आटे की आकृति बना कर उसकी बलि देने लगे थे।[44] मांस के पकवान की अपेक्षा माष दाल की फलियों का प्रयोग करने की सलाह दी गयी। मांस, तेल और क्षारीय गुण वाले पदार्थों से परहेज ही रखने को कहा गया।[45] धार्मिक दृष्टि से ही नहीं अपितु स्वास्थ्य की दृष्टि से भी मांसाहार को अनावश्यक माना गया। स्कन्द पुराण[46] में आयुर्वेद के इस मत का खण्डन किया गया कि मांसाहार करने वाले लोग स्वस्थ–पुष्ट और दीर्घजीवी होते हैं। इस मत को मांस लोभियों और दुष्ट पापात्माओं का मत कहा गया। यह भी कहा गया कि मांस खाने से न तो आयु बढ़ती है और न ही इससे स्वास्थ्य या बल बढ़ता है। मांस खाने वाले रोगी, दुर्बल और अल्पायु देखे जाते हैं तथा जो लोग मांस नहीं खाते वे भी पृथ्वी पर निरोग दीर्घायु और ह्ष्ट–पुष्ट अंगों वाले होते हैं। कहा गया कि है मांस की उत्पत्ति काठ या पत्थर से नहीं होती किसी जीव की हत्या करके ही मांस मिलता है। अतः मांसाहार को सर्वथा त्याग देना चाहिये। बौद्ध और जैन संस्कृतियों मे विशेष रूप से अहिंसा का प्रधान रूप से प्रतिपादन किया गया था। हिंसा किये बिना मांस मिलना असंभव है, अतः ऐसी परिस्थिति में इन दोनों संस्कृतियों के अनुयायी गृहस्थों द्वारा भी मांस का परित्याग किया जाने लगा। बौद्ध संस्कृति की महायान शाखा में भी मांस भोजन का सर्वथा निषेध था।[47] जैन गृहस्थों और मुनियों के लिये भी मांस भोजन सर्वथा त्याज्य था। जैन अनुयायी शहद का भी प्रयोग नहीं करते थे क्योंकि इसका सम्बन्ध मधुमक्खियों के अण्डों से होता है।[48] सभी प्रकार के तरल पेय कपड़े में छानकर ही पीने की आज्ञा थी, ताकि कीट–पतंगे इन पेयों के माध्यम से खाए न जा सकें। रात को भोजन करने की भी आज्ञा न थी क्योंकि इससे अंधेरे में भोजन के साथ कीट–पतंगे भी खाए जाने की सम्भावना रहती है। मांसाहार के सम्बन्ध में एक जैन लेखक अमितगति तो यहां तक कहता है कि ''मांस खाने से अच्छा है विष खा लेना।''[49] राजा कुमारपाल जैन धर्म ग्रहण करने से पूर्व मांसाहार करता था, अतः प्रायश्चित के रूप में उसने जानवरों की हत्या पर कठोर दण्ड लागू कर दिया।[50] अन्य उल्लेख भी मिलते हैं जिससे पता चलता है कि राज्य में मांसाहार निषेध किया गया था। महापद्मसरोवर में मत्स्य तथा पक्षियों की हिंसा करना निषेध था।

कश्मीर के राजा मेघवाहन और अवन्ति वर्मा के शासन काल में सभी प्राणियों की हिंसा बन्द थी।[51] इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि सात्विक वृत्ति वाले तथा अध्यात्मवादी गृहस्थों की मांस के प्रति धारणा अवश्य ही परिर्वतित हो गयी। मांस भोजन को इस युग में समादर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। संभवतः समाज की इसी परिवर्तित मनोवृत्ति का चित्रण करते हुए महाकवि बाण[52] कहते हैं कि मधु—मांस आदि का आहार सज्जन पुरूषों के द्वारा निन्दित है। स्पष्टतः प्राचीन काल से ही मांसाहार को स्वीकृति प्रदान नहीं की गई थी इसे अखाद्य ही माना गया था। जो लोग मांसाहार करते थे उनके लिए भी अनेक प्रकार के नियम बनाए गए थे। मांसाहार को पाप कर्म माना गया और इसे अध्यात्मिक अभ्यूदय एवं सात्विकता प्राप्त करने में बाधक माना गया। धर्मानुसार आहार विहार के लिए आवश्यक था कि व्यक्ति शाकाहारी भोजन करे इसे स्वास्थ्यवर्धक, पवित्र एवं धर्मानुसार माना गया था।

संदर्भ

1 ऋग्वेद, 8/4/18,
2 वही, 6/53/9, 6/54/7, 6/56/5, 1/29/13,
3 अथर्ववेद, 2/26, 9/6/9, 5/19/9, 12/4/38,
4 ऋग्वेद, 10/10/9; वाजसनेयि संहिता, 13/48,
5 छान्दोग्य उपनिषद् 2/19/2; शतपथ ब्राह्मण, 14/1/1/29; कौषीतकि ब्राह्मण, 11/13,
6. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/5/17/38—39; पारस्कर गृह्रासूत्र, 1/19,
7. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/5/17/32—36; गौतम धर्मसूत्र, 17/29, 34, 35; वसिष्ठ धर्मसूत्र, 14/48,
8. पारस्कर गृह्रासूत्र, 11/28,
9. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/8/19/18—19; बौधायन गृह्रासूत्र, 2/11/53—54; आश्वलायन गृह्रासूत्र, 1/24—25,
10. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/2/5/15; बौधायन धर्मसूत्र, 3/2/22; गौतम धर्मसूत्र, 17/13,
11. वाल्मीकि रामायण, 4/17—38; महाभारत, शान्ति पर्व, 36/22, 36/23—24,
12. महाभारत, कर्ण पर्व, 45/29; महाभारत, अनुशासन पर्व, 78/17; महाभारत, द्रोण पर्व, 73/27,
13. वही, उद्योग पर्व, 8/26, 35/26; महाभारत, शान्ति पर्व, 326/5; महाभारत, आदि पर्व, 60/13—14,
14. वही, अनुशासन पर्व, 51/26—33,
15. वाल्मीकि रामायण, 59/19; महाभारत, शान्ति पर्व, 141/57, 141/75, 141/100,
16. वाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड, 36/41; महाभारत, शान्ति पर्व, 337/8; महाभारत, वन पर्व, 2/58,
17. महाभारत, शान्ति पर्व, 337/4—5,
18. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 114 तथा 117,
19. वही,
20. आवश्यक चूर्णी, 2, पृ0 202,
21. सूत्रकृतांग, 2, 6/37—42,
22. आचारांग सूत्र, 2, 1/3/245,
23. उत्तराध्ययन सूत्र, 22/14,
24. डी0 आर0 भंडारकर, अशोक, पृ0 156,
25. जे0 डब्लू0 मैक्रिण्डल, पृ0 99, स्ट्रेबो, 16/1/59,
26. बी0 एम0 बरूआ, पूर्वोक्त, अशोक का द्वितीय शिलालेख,
27. वही, अशोक का तृतीय शिलालेख,
28. वही, अशोक का पांचवा स्तम्भ लेख,
29. वही, अशोक का चतुर्थ शिलालेख,
30. चुल्लवग्ग, 7/3/15,
31. मनु स्मृति, 5/11, 14, 27, 41,
32. महावग्ग, 6/19, 35, पृ0 253,
33. रत्नकरनंदश्रावकाचार, 7/141—42,

34. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/109; आश्वलायन गृहसूत्र, 1/24–25,
35. मनु स्मृति, 5/46–95,
36. जे0 एफ0 फ्लीट, कॉरपस इन्सक्रिप्शन इण्डिकोरम, भाग 3, 3/71,
37. रघुवंश, 9/74, 16/2,
38. मत्स्य पुराण, 78/6,
39. वायु पुराण, 57/100,
40. बृहस्पति स्मृति, 25/13,
41. यशस्तिलेक, पृ0 330, 335,
42. ब्रह्म *पुराण*, 216/ 63, 65, 66,
43. भागवत पुराण, सप्तम *स्कन्ध*, 15/7–11; *एकादष स्कन्ध*, 5/11,
44. समरयक्कहा, पृ0 210–213; यशस्तिलेक, भाग 4,
45. प्रजापति स्मृति, 152–153; पद्म पुराण, 2517,
46. स्कंद पुराण, नागर खंड, 29/225–237,
47. ह्वेनसांग, पूर्वोक्त, पृ0 57,
48. यशस्तिलेक, पृ0 331,
49. कुमारपाल चरित, 8/68; सुभासित सन्दोह, 21/16,
50. मोहराजपराजय, 4/93,
51. राजतरंगिणी, 5/64, 119,
52. कादम्बरी, पृ0 32,

सहायक ग्रंथ

उपाध्याय, भगवतशरण : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, हिन्दी समिति रचना विभाग, उ.प्र. लखनऊ, 1969
पाण्डुरंग, वामन काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास भाग– 1–3(हिन्दी अनुवाद), उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992
जायसवाल, मंजुला : वाल्मीकियुगीन भारत, महामती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983
जैन, जगदीशचन्द्र : जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी, 1965
सिंह, परमानन्द : बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, हलधर प्रकाशन, वाराणसी, 1996
शास्त्री, नीलकण्ठ : नन्द मौर्ययुगीन भारत, दिल्ली, 1969
Auboyer, Jeannie : Daily life in Ancient India, Asia Pub. House, Bombay, 1965
Law, B.C. : India as described in Early Texts of Buddhism and Jainism, 1941
Rhys, David T.W. : Buddhist India, London, 1903
Sastri, K.A.N. : A History of South India, Oxford Press, Madras, 1968
Jain, J.C. : Life in Ancient India as depicted in Jain Canons, Bombay, 1947
Wagle, Narendra : Society at the time of the Buddha, Bombay, 1966